शोध मंथन Vol. XIV No.I Jan.-Mar.2023 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.870 (SJIF)

दलित काव्य एवं कहानियों में सामाजिक चेतना (एक विश्लेषण)

डॉ० मीना शुक्ला
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
वी०एम०एल०जी० कॉलेज, गाजियाबाद
ईमेलः *shuklameena54@gmail.com*

प्राप्तिः 13.02.2023
स्वीकृतः 15.03.2023

2

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में दलित काव्य एवं कहानियों के माध्यम से दलितों में सामाजिक/जातिगत चेतना जाग्रति पर विमर्श एवं विश्लेषण किया गया है। पत्र में प्रमुख दलित कवियों एवं कहानीकारों की रचनाओं में दलित पीड़ा, उनके प्रति समाज में हुआ शोषण, अन्याय तथा उनके आक्रोश, विरोध, विद्रोह एवं पुरातन सामाजिक व्यवस्था के स्थान पर समतावादी नव–समाज निर्माण की अभिव्यक्ति का विश्लेषण, समाज में बढ़ता जातिवाद, जातीय कट्टरता की आशंका को भी संज्ञान में लिया गया है। प्रमुख कवि एवं कहानीकारों में, जिनकी रचनाओं का विश्लेषण किया गया है– डॉ० ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नेमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, मुंशी प्रेमचन्द, डॉ० श्यौराज सिंह 'बेचैन', शत्रुघ्न कुमार आदि प्रमुख हैं।

मुख्य बिन्दु

दलित, काव्य, कहानी, सामाजिक चेतना, साहित्य, अस्पृश्यता।

विश्व के विभिन्न देशों में विविध आधारों पर स्तरीकरण की प्रक्रिया को देखा जा सकता है। कहीं प्रजातीय, कहीं दास प्रथा, कहीं वर्ग भेद और भारतीय समाज में जातिगत आधार पर विभेदीकरण दिखाई देता है। प्राचीन काल में वर्ण भेद और कालान्तर में जाति आधारित भेद–भाव ने समाज को उच्चता निम्नता की श्रेणियों में विभाजित कर अस्पृश्यता को जन्म दिया। जाति के कठोर नियमों के परिणामस्वरूप शूद्र अथवा दलितों को बहुत लम्बे समय तक निम्न, हेय, अन्याय पूर्ण, शोषित और अमानवीय जीवन जीना पड़ा। डॉ० अम्बेडकर के अनुसार, हिन्दू समाज उस बहुमंजिला इमारत की तरह है जिसमें प्रवेश करने के लिए न कोई सीढ़ी है और न ही कोई दरवाजा; जो जिस मंजिल में पैदा होता है उसे उस मंजिल में मरना होता है। भारतीय समाज में दलित समस्या का मूल इसकी संरचना में ही निहित है। सुधार आन्दोलनों और संवैधानिक प्रयासों के साथ ही हिन्दी साहित्य में दलितों की पीड़ा को कहानियों, काव्य, उपन्यासों, आत्मकथाओं तथा अन्य विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली, यही साहित्य दलित साहित्य के नाम से जाना गया। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य हिन्दी कहानियों और काव्य में दलित चेतना के विकास का विश्लेषण करना है।

किसी भी विधा में दलित साहित्य यथार्थ में दलित चेतना का साहित्य है। दलितों द्वारा भोगी गई उपेक्षा, अपमान, पीड़ा व शोषण की अभिव्यक्ति भी इस रूप में हो कि उससे व्यक्ति में हीनता बोध के स्थान पर जातीय स्वाभिमान और आत्म गौरव का विकास हो। दलित साहित्य अपने आप में

एक नये युग, नव चेतना का साहित्य है। इसकी अपनी अलग धारा है। पीड़ा की अभिव्यक्ति है, तो नई आशा भी है। दलित साहित्य दलितों के सामाजिक, आर्थिक व नागरिक अधिकारों से वंचित, अन्याय, शोषण के प्रति नकार, विरोध और मुक्ति का उद्घोष है। जाति आधारित अस्पृश्यता, उच्चता–निम्नता, समाज में स्थापित अतार्किक मूल्यों, विश्वासों और ऐसी मान्यताओं के विरुद्ध है जो मनुष्य को अमानवीय बना देता है।

हिन्दू समाज में जाति आधारित उच्चता–निम्नता और जाति–पाति का विरोध और इस भेद को जन्म के आधार पर मानने से इन्कार करते हुए कबीर ने लिखा है–

ऊँचे कुल का जनमिया, जो करनी ऊँच न होय।
सुबरन कलष सुरा भरा, साधू निन्दा सोय।।

शूद्रों के अस्पृश्य होने का विचार सम्भवतः सूत्रकाल में विकसित हुआ। अस्पृश्यता के मूल में अपवित्रता की धारणा है। पवित्रता की धारणा के विषय में समाजशास्त्री घुरिये ने बताया, 800 ईसा पूर्व न केवल घृणित तथा पतित–चाण्डालों में, बल्कि समाज की चतुर्थ व्यवस्था, शूद्रों, दासों में सांस्कृतिक पवित्रता एवं इसका कार्य रूप प्रचलन में था। समाजशास्त्री हट्टन ने इनके विषय में लिखा है कि इन बाह्य, जातियों की स्थिति थोड़ा प्रजातीय, थोड़ा धार्मिक तथा कुछ सामाजिक रिवाजों का परिणाम है।

गाँधी जी ने कहा था, अस्पृश्यता जिस रूप में आज हिन्दू समाज में प्रचलित है वह भगवान तथा मनुष्य दोनों के ही विरुद्ध है। बाबा साहब के विषय में कहा गया है कि एक अछूत के हाथ में कलम आयी और कलम के सहारे अपने दर्द को दलित साहित्य ने सृजनशील बनाया। भारतीय साहित्य के लिए जो अनुभव अछूते थे उनका अछूत और अपवित्र समझे जाने वाले साहित्यकारों ने अपनी कलम से स्पर्श किया। जिसके माध्यम से दलितों के दुख, पीड़ा, गुलामी और उपहास के साथ ही दरिद्रता में जीवन शैली के चित्रण की अभिव्यक्ति की गई है। दलितों की वेदना ही दलित साहित्य की जन्मदात्री है। यह वेदना एक व्यक्ति की नहीं, एक दिन की नहीं, अपितु यह समाज के एक वर्ग विशेष और लम्बे युगों से चली आ रही है। यह बहिष्कृत समाज की वेदना है अतः इसका स्वरूप भी सामाजिक है।

"दलित समाज, आनंद और मनोरंजन का साहित्य नहीं है बल्कि हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति से दलितों को जो यातना और वेदना मिली है, उसे परिवर्तनगामी स्वर में बदलने का साहित्य है, सम्पूर्ण जनमानस को संवेदनशील बनाने का साहित्य है।"[1]

"समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की स्थापना दलित कविताओं का मूल स्वर है, जो फुले–अम्बेडकरवादी चिंतन एवं विचारधारा पर आधारित है। एक अर्थ में दलित कविता, अतीत और वर्तमान की सामाजिक एवं सांस्कृतिक ओालचना भी है। वर्चस्ववादी सभ्यता एवं संस्कृति के हजारों वर्ष के इतिहास को प्रश्नांकित कर दलित कविता ने साहित्य की अवधारणा और सौंदर्यबोध के मानदंडों को अर्थांतरित कर नवीन स्वरूप दिया है। अम्बेडकरवादी दर्शन एवं विचारधारा से दलित चेतना का जन्म हुआ है।"[2]

दलित कहानियों में मोहनदास नेमिशराय, श्यौराज सिंह बेचैन, पुरुषोत्तम सत्य प्रेमी पुन्नी सिंह, ओमप्रकाश वाल्मीकि, प्रेम कपाड़िया, जयप्रकाश कर्दम, रत्नकुमार सांभरिया, सूरजपाल चौहान,

डॉ० दयानन्द बटोही, डॉ० तेज सिंह तथा मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों में 'कफन', 'ठाकुर का कुआँ', 'दूध का दाम', मन्दिर, सद्गति, लांछन, सौभाग्य के कोड़े, शूद्र, झूठ, मुक्ति मार्ग, विश्वास आदि में प्रेमचन्द ने दलित आन्दोलनों में महत्वपूर्ण रचनात्मक योगदान दिया है। निराला की 'चतुरी चमार', 'बिल्ले सुर बकरिहा' और 'कुल्ली भाट' दलित जीवन पर आधारित कहानियाँ हैं। नेमिशराय की अपना गाँव, ओमप्रकाश की चर्चित कहानी 'सलाम', 'बैल की खाल, भय, गौहत्या, ग्रहण, पच्चीस चौका डेढ़ सौ जैसी कहानियों में दलित जीवन संघर्ष, उनकी छटपटाहट और बेचैनी तथा व्यथा के साथ–साथ सड़ी–गली मान्यताओं, प्रचलनों व व्यवस्था के प्रति विरोध एवं विद्रोह का विगुल भी है। जयप्रकाश कर्दम की चमार, लाठी, दयानन्द बटोही की सुरंग, सुबह के पहले, शहर, अंधेरों के बीचों–बीच, मुर्दा गाड़ी आदि कहानियों के माध्यम से सरल, सहज आम बोलचाल की भाषा एवं आत्म कथात्मक शैली में दलित समाज की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है।[3]

प्रस्तुत अध्ययन में कुछ महत्वपूर्ण एवं चर्चित कविताओं और कहानियों को चुना गया है जिनमें तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था एवं सामन्ती अधिकार तथा दलितों की दीन–हीन दशा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। काव्य अभिव्यक्ति का सहज एवं सशक्त माध्यम है। दलितों ने जो सहा, भोगा उसे ही कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। ये कविताएं पीड़ा की अंधगुफाओं से निकली हैं। अभिव्यक्ति में ये सहज होने पर भी अनुभूति में उत्तेजक हैं। समाज के एक बड़े वर्ग को युगों–युगों तक जो पीड़ा दी गई उसकी यात्रा इतनी लम्बी थी कि उसे उन्होंने (दलितों ने) अपना जीवन, अपना भाग्य, कर्म–धर्म मान लिया और स्वीकार कर लिया कि वे इसी नारकीय, अमानवीय जीवन के अधिकारी हैं। उनका अतीत, वर्तमान और भविष्य अंधकार से भर दिया गया था, उनकी सारी सम्भावनाएं छीन ली गई थीं, उन्हें खोज लाने वाले ये कवि हैं जिन्होंने अपनी पीड़ा को काव्य के रूप में वाणी दी।

डॉ० श्यौराज सिंह बेचैन हिन्दी दलित कविता के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। ये दलित वर्ग की उस वेदना को मुखर करना चाहते हैं जिसे उन्होंने निरन्तर झेला है। डॉ० बेचैन के काव्य संग्रह 'नई फसल' (1989), 'क्रौंच हूँ मैं' (1996), 'चमार की चाय' (2017), 'सुन्दरी–फूलन देवी' (1982), 'भोर के अंधेरे में' (2019)। 'सुन्दरी फूलन देवी' नामक काव्य में डॉ० बेचैन फूलन देवी के संघर्ष के बहाने एक ओर जहाँ सामन्ती व्यवस्था का पर्दाफाश करते हैं, वहीं दूसरी तरफ स्त्री जीवन का अलक्षित पक्ष सामने लाते हैं। यदि वास्तविकता के धरातल पर देखा जाए तो स्पष्ट है कि सामन्ती किला में दलित और स्त्री विरोधी संहिताओं का निर्माण हुआ है।

डॉ० बेचैन की कविता– ''इन आँखों के/सपने तो टूट गये लेकिन/जिन आँखों में जन्मे ही नहीं/उनकी सोचो/तुमने तो कह ली/अपनी और पराई थी/अब खोल सको तो/बेजुबान का मुँह खोलो।''[4]

'सदियों का संताप' ओमप्रकाश वाल्मीकि का पहला कविता संग्रह है, जिसमें जातीय दंश के विरुद्ध आक्रोशित स्वर में एक आन्दोलन का स्वरूप है। इन कविताओं में 'जाति व्यवस्था' और उससे उपजे यातनापूर्ण जीवन के विरुद्ध मुखरता ज्यादा गहरी है। वाल्मीकि ने अपनी कविताओं के माध्यम से दलित समाज का आक्रोश, विद्रोह, नकार, आग्रह, आक्रामकता, भाषिक विकास, दलित जीवन संघर्ष की पृष्ठभूमि, उत्पीड़न के सन्दर्भ बिन्दु और उनसे उत्पन्न वेदनाओं के दंश, दलित संस्कृति की विशिष्ट जीवन दृष्टि आदि का यथार्थ चित्रण किया है।

दलित साहित्य भारतीय समाज में पूर्ण परिवर्तन की माँग तो रखता है, उसका लक्ष्य है पूर्ण सामाजिक परिवर्तन। हिन्दी ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में जब यह साहित्य उभरा तब विभिन्न क्षेत्रों में व्यंग्य कसे जाने लगे। इन व्यंग्यों को कवि शत्रुघ्न कुमार ने अपनी एक कविता में इस प्रकार प्रस्तुत किया–

''हँसे थे वे यह सुनकर–
कि दलित लेखक और कवि/झुंझलाये थे वे यह जानकर
कि चमार लेखक और कहानी/गुस्साये थे वे यह पढ़कर
कि अछूत लेखक और उपन्यासकार/हकलाये थे वे यह देखकर
कि भंगी पत्रकार और संस्मरणकार/अचंभित हैं वे
कि ये कैसा विप्लव, यह कैसा भूचाल/जानते हैं वे, समझ गये हैं वे
कि अब रोकना मुश्किल है इस सैलाब को/इसलिए शड़यन्त्र बुन रहे हैं
चक्रव्यूह रच रहे हैं वे/दलित साहित्य में घुस पैठ करने को
हाथ बढ़ा रहे हैं, वे इस पर नेतृत्व को/सावधान।''[5]

मोहनदास नेमिशराय की कविता–
''क्रान्ति का हथौड़ा रूकने न पाये/राजमहलों की दीवारों के आस–पास
जहाँ का राजा बहरा है/या फिर शायद गूँगा''।
''कल मेरे हाथ में झाडू था, आज कलम
कल झाडू से मैं तुम्हारी गन्दगी हटाता था
आज कलम से मैं तुम्हारे भीतर की गन्दगी धोऊँगा।''[6]

अम्बेडकर जी के विषय में कहा गया कि एक अछूत के हाथ में कलम आयी और उसने देश को संविधान देकर अंधेरी बस्ती तक ज्ञान का उजाला फैलाया। जिनके हाथ में झाडू था उनके हाथ में कलम आया। डॉ० अम्बेडकर ने कहा था कि हम अनुभव करते हैं कि कोई दूसरा आकर हमारे दुख–दर्द दूर नहीं कर सकता और जब तक हमारे हाथों में राजनीतिक शक्ति नहीं आ जाती, हमारे दुख–दर्द दूर नहीं हो सकते।[7] विभिन्न कहानियों के माध्यम से दलितों की दशा एवं तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, सामन्ती अधिकार और उनकी दीन–हीन दशा का चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

प्रेमचन्द की 'ठाकुर का कुँआ' कहानी को एक राजपूत जमींदार द्वारा दलितों के साथ किये गये अत्याचार की पराकाष्ठा कहा जा सकता है। जहाँ सभी दलित उससे आतंकित रहते हैं तथा उन्हें ठाकुर के कुँए से पानी लेने का अधिकार नहीं है। इसमें जाति व्यवस्था के उत्पीड़न का दंश दिखाई देता है। एक दलित स्त्री गंगी का पति जोखू बीमार है, वह प्यास लगने पर गंदा रखा हुआ पानी पीने लगता है उसकी पत्नी गंगी गन्दा पानी पीने से रोकती है तथा ठाकुर के कुँए पर पानी लेने पहुँच जाती है लेकिन पानी लाने में सफल नहीं होती है और देखती है कि उसका पति गन्दा पानी पी रहा है। इस कहानी में एक दलित दम्पत्ति की विवशता का मार्मिक चित्रण किया गया है। मुंशी प्रेमचन्द की एक अन्य कहानी 'घास वाली' भी दलित पीड़ा को दर्शाती है। इस कहानी को दलित जीवन की

विसंगतियों और विडम्बनाओं की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है, कहानी की मुख्य पात्र मुलिया चमार जाति की है। उसका पति तांगा चलाने का कार्य करता है। गाँव का ठाकुर चैन सिंह मुलिया के समक्ष अमर्यादित प्रस्ताव रखता है। मुलिया बाजार में घास बेचकर आजीविका चलाने वाली स्वाभिमानी महिला है। ठाकुर की इस बात पर वह उसे फटकारते हुए कहती है– ''क्या समझते हो कि मुलिया चमार है तो उसकी देह में लहू नहीं है, उसे लज्जा नहीं आती, अपनी मर्यादा का विचार नहीं है, मेरा रूप रंग तुम्हें भाता है, क्या घाट के किनारे मुझसे कहीं सुन्दर आँखें नहीं घूमा करती। मैं उनके तलवों की बराबरी नहीं कर सकती। तुम उनमें से किसी से क्यों दया नहीं माँगते–मगर तुम वहाँ न जाओगे क्योंकि वहाँ जाते तुम्हारी छाती दहलती है। मुझसे दया माँगते हो इसलिए न कि मैं चमारिन हूँ, नीच जातिन हूँ और नीच जात की औरत जरा–सी धमकी, घुड़की या जरा से लालच से मुट्ठी में आ जाएगी। कितना सस्ता सौदा है। ठाकुर हो न, ऐसा सस्ता सौदा क्यों छोड़ने लगे? यह कहानी एक स्त्री और उस पर भी दलित स्त्री होने की विवशता को दर्शाती है। 'कफन' प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ दलित चित्रण कहानी है। कहानी में इंसान त्रस्त होकर किस स्तर तक गिर सकता है, वह कफन बताती है। यही दलितों का यथार्थ है। कहानी में दिखाया गया है कि घीसू–माधो विवशता में कामचोर निकम्मे बन जाते हैं आज भी गाँव में चमारों से खेतों में जी तोड़ काम लिया जाता है और तुच्छ या नगण्य मजदूरी दी जाती है। इससे वे काम करने से कतराते हैं। यह कहानी दलित संवेदना की कहानी इसलिए है क्योंकि इसमें दलित के पराकाष्ठा पर पहुँच गये शोषण से उपजे नैराश्य का चित्रण किया गया है। 'बहू' की लाश के कफन का जो चन्दा, बख्शीश में इन्हें पैसे मिलते हैं, वे इन पैसों का दुरुपयोग करते हैं।[8]

ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित कहानी 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' एक अत्यन्त सशक्त और भारतीय समाज में व्याप्त आर्थिक शोशण पर प्रहार करती है। कहानी में एक दलित पिता और उसके पुत्र सुदीप के बीच का एक प्रसंग है। जब सुदीप अपनी पहली कमाई लेकर अपने गाँव आ रहा होता है, बस में हो रही घटनाएं उसे अतीत में ले जाती हैं। कक्षा चार में पढ़ रहे सुदीप ने अपने मास्टर शिव नारायण सिंह से इसलिए बहुत मार खायी थी क्योंकि उसने पच्चीस चौका डेढ़ सौ बताया था। यह हिसाब उसके पिता ने उसे याद कराया था। उसके पिता को गाँव के चौधरी ने उसकी माँ की बीमारी में सौ रुपये उधार दिये थे। पैसे लौटाने की बात करते समय चौधरी ने उसके पिता से कहा–''मैन्ने तेरी बुरे बखत में मदद करी ती। अब तू ईमानदारी से पैसा चुका देणा, सौ रुपये पर हर महीने पच्चीस रुपये ब्याज के बनते हैं। चार महीने के ब्याज–ब्याज के हो गये पच्चीस चौका डेढ़ सौ। तू अपना आदमी है तेरे से ज्यादा क्या लेणा।''[9]

उसके अनपढ़ पिता चौधरी के इस गणित को क्या समझते। यही कारण था कि सुदीप को पच्चीस का पहाड़ा याद करते समय पच्चीस चौका सौ के बजाय पच्चीस चौका डेढ़ सौ याद कराया था और जिसके लिए उसने स्कूल में मास्टर से बहुत पिटाई खायी थी। आज शिक्षा ग्रहण करके अपनी पहली कमाई लेकर घर लौटा और अपनी तनख्वाह के रुपयों से अपने पिता को हिसाब समझाता है कि ''पच्चीस चौका सौ होता है डेढ़ सौ नहीं।''[10] पिता के अन्तस में विश्वास के छले जाने की टीस उठती है और क्रोध का लावा फूट पड़ता है–''कीड़े पड़ेगे चौधरी...कोई पानी देने वाला भी नहीं बचेगा।''[11] इस कहानी के माध्यम से लेखक ने एक ओर जहाँ दलित शोषण, विश्वासघात और

चौधरी द्वारा किये छल के साथ यह भी सन्देश दिया है कि शिक्षा प्राप्त करके दलित अपने शोषण को जान भी सकता है और उससे मुक्ति का रास्ता भी खोज सकता है। निरक्षरता समाज और व्यक्ति के लिए अभिशाप है यह कहानी से स्पष्ट होता है। दलित साहित्य में संघर्ष की अभिव्यक्ति काफी तीखी रही है उसे और तल्ख होने की जरूरत है क्योंकि मनुष्य के दुराग्रह इतनी आसानी से नहीं मिटते उसके लिए विमर्श के साथ सामाजिक आन्दोलन की भी आवश्यकता है, छुआछूत की बात 'अछूत' इस भेदभाव पर अछूत कथा में व्यक्त हुई है। मजदूरनी का तर्क बड़ा सशक्त है, 'आपके घर में गेहूँ छू दिया तो उसका सत्यानाश हो गया और खेत में हम ही लोगन के बिरादर काटत, ढोवत, बोरा में भरते हैं तब नहीं सत्यानाश होता।"[12] विवेकहीन भेदभाव को युगों से ढोते हुए लोगों में अब कुछ समझ पैदा होने लगी है और जवाब देने का साहस भी उत्पन्न हुआ है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि दलित साहित्य दलित समाज में चेतना भरने वाला साहित्य है। दलित साहित्य भारतीय समाज में पूर्ण परिवर्तन की माँग को रखता है। उसका उद्देश्य है–पूर्ण परिवर्तन। आज दलित काव्य और कहानियों के माध्यम से अपने अधिकारों के लिए जागरूक है। अपनी अस्मिता के लिए उनके संघर्श की मुखर अभिव्यक्ति है। दलित अनुभूति दर्द, घष्णा, अपमान, पीड़ा की अभिव्यक्ति है। सौम्यता और आक्रोश दलित कविता में साथ–साथ चलते हैंकृकृ ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नेमिशराय, मलखान सिंह आदि की कविताएं आक्रोशपूर्ण स्वर में सवाल करने के साथ–साथ ललकारती और चुनौती देती नजर आती हैं। निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी दलित साहित्य मात्र अपनी पीड़ा, दुख व पतित जीवन की कथा ही व्यक्त नहीं करती अपितु समाज में व्याप्त व्यभिचार शोषण व अन्याय से मुक्ति के लिए तथा आत्मविश्वास जगाने व समतावादी समाज निर्माण के लिए एकजुट होने पर जोर देती है।

उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त दलित विमर्ष अथवा विश्लेषण करते समय एक–दूसरे दषश्टिकोण से भी चर्चा करना महत्वपूर्ण होगा। यह सत्य है कि भारतीय समाज में लम्बे समय तक दलितों का शोशण हुआ उन्हें असहनीय दर्द व पीड़ा, शोशण और संघर्शपूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ा और कालान्तर में जाति व्यवस्था धीरे–धीरे जातिवाद में परिवर्तित होती चली गई और आज जातिगत कट्टरतावाद, ब्राह्मणवाद और दलितवाद जन्म ले चुका है। यद्यपि दलित साहित्यकारों का उद्देश्य जाति व्यवस्था को समाप्त कर एक समतावादी समाज की स्थापना करना है लेकिन जहाँ वे अपनी जाति को सशक्त बनाकर प्रतिशोध के स्तर पर आमने–सामने खड़े हैं वहाँ समता की स्थापना काल्पनिक प्रतीत होती है। ठीक उसी तरह से जैसे कार्ल मार्क्स ने वर्गविहीन समाज की कल्पना की थी। आज दलित साहित्य ने साहित्य के केन्द्रीय आख्यान के रूप में वर्ण विरोधी विचारधारा को स्थापित करने का प्रयत्न किया है जिससे दलित अस्मिता को सफलतापूर्वक रेखांकित किया जा सकता है। साथ ही आवश्यकता इस बात को समझने की है कि जातिगत समस्या का हल प्रतिशोध अथवा जातिवाद को बढ़ावा देने में नहीं ढूंढा जा सकता है अपितु मानवीय मूल्यों को विकसित कर एक नवीन समाज को स्थापित करने की आवश्यकता है, जहाँ तक दलित साहित्य की बात की जाए तो दलित साहित्यकार अपनी मौलिकता पर जोर देते हुए अपने मूलाधार से जुड़े रहें।

संदर्भ

1. डॉ0 रामचन्द. (2014). 'दलित कविताओं का स्वर परिवर्तनगामी है'. दलित चेतना की कविताएं (सम्पादित). प्रवीण कुमार. पृष्ठ 7.
2. वही. पृष्ठ 8.
3. https://m.sahitakunj.net>blog>d.........
4. सिंह, डॉ0 श्यौराज. (2006). 'कौंच हूँ मैं'. बेचैन, इतिहास बोध प्रकाशनः दिल्ली. पृष्ठ 53.
5. कदम, डॉ० स्वर्णलता. (2012). 'साठोत्तरी हिन्दी काव्य में दलितगत चेतना का निरूपण'. (पत्र प्रस्तुति). राष्ट्रीय संगोष्ठी–वर्तमान समाज और साहित्य में दलित विमर्ष, वी०एम०एल०जी० कॉलेजः गाजियाबाद. पृष्ठ 53.
6. https://www.hindwi.org>Kavita.
7. सिंह, तेज. सम्पादकीय. (2012). 'अपेक्षा' (पत्रिका). नई दिल्ली. पृष्ठ 4.
8. प्रेमचन्द., कक्कड़, रामआसरे. (1950). 'प्रेमचन्द की सर्वश्रेश्ठ कहानियाँ'. हिन्दी साहित्य प्रेसः इलाहाबाद. पृष्ठ 108.
9. चन्द्र, महेश., वाल्मीकि, ओमप्रकाश. (2012). 'कथा सौरभ' (सम्पादित). 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ'. लोक भारती प्रकाशनः इलाहाबाद. पृष्ठ 114.
10. वही. पृष्ठ 116.
11. वही. पृष्ठ 116.
12. कीर्ति, डॉ० विमल. (2001). 'दलितपन सामाजिक व्यवस्था की देन है'. (सम्पादित) डॉ० श्यौराज सिंह 'बेचैन', डा० रजत रानी 'मीनू', 'दलित दखल', श्री साहित्य संस्थान लोनीः गाजियाबाद. पृष्ठ 89.